

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 21: सूर्यदेव का रथ

22 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



आकाश के ठीक हृदय में स्थित, देदीप्यमान सूर्यदेव अपने एकचक्रीय स्वर्णिम रथ पर विराजमान होकर तीनों लोकों को तपाते और आलोकित करते हैं — भगवान् का वह अपना नेत्र जिससे वे प्रत्येक प्राणी के लिए दिन और रात का माप करते हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

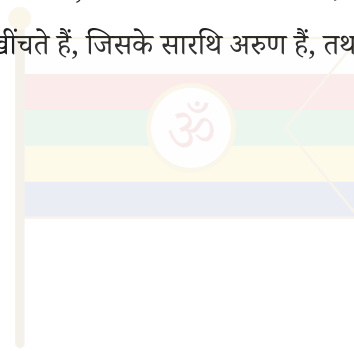
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। पार्थिव तल के विशाल द्वीपों और सागरों के पार ले चलकर, अब श्रीशुक हमारी दृष्टि को ऊपर, आकाश के देदीप्यमान मण्डल की ओर उठाते हैं। यहाँ वे हमें आकाश के ठीक मध्य में एक दीप के समान स्थित देदीप्यमान सूर्य दिखाते हैं, और वह अद्भुत रथ जिस पर सूर्यदेव विराजते हैं — वह रथ

जिसका एकमात्र चक्र स्वयं संवत्सर है, जिसे वैदिक छन्दों के नाम धारण करने वाले सात अश्व खींचते हैं, जिसे अरुण हाँकते हैं, और जिसकी साठ सहस्र लघुकाय ऋषि अविराम स्तुति करते हैं। इसे सुनना यह अनुभव करना है कि भगवान् प्रत्येक प्राणी के कल्याण के लिए प्रत्येक दिन के उदय और अस्त को कितने वात्सल्य से रचते हैं।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 21 (एकविंश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: सूर्यदेव का रथ और संवत्सर का चक्र
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को अपना उत्तर आगे बढ़ाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: पृथ्वी के ऊपर का नक्षत्र-मण्डल — मेरु पर्वत के चारों ओर मानसोत्तर पर्वत के वलय पर सूर्य का परिक्रमा-पथ
- केन्द्रीय विषय: आकाश के मध्य में सूर्य का स्थान और उसका दिन-रात्रि का विधान; मानसोत्तर पर लोकपाल देवताओं की चार पुरियाँ; और सूर्यदेव का रथ, जिसका एकमात्र चक्र संवत्सर है, जिसे सात वैदिक अश्व खींचते हैं, जिसके सारथि अरुण हैं, तथा वे ऋषि और दिव्य प्राणी जो मास-दर-मास सूर्यदेव की उपासना करते हैं
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 21, श्लोक 1-19
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय से

बीसवें अध्याय में, श्रीशुक ने उन छह बाह्य द्वीपों का वर्णन किया जो पार्थिव तल को घेरे हुए हैं, प्रत्येक अपने विशाल सागर से मण्डित, प्रत्येक अपने नियत शासक से शासित, और प्रत्येक में परमेश्वर वहाँ के जनों को प्रिय एक रूप में पूजित। उन सबके परे उन्होंने महान् लोकालोक पर्वत का नाम लिया, वह भित्ति जो प्रकाश के प्रदेश को उसके परे फैले अन्धकार से पृथक् करती है। नीचे की पृथ्वी का विस्तार बताकर, अब वे मुनि अपनी दृष्टि ऊपर उठाते हैं कि उस सूर्य की गति प्रकट करें जो इस समस्त सृष्टि को आलोकित करता है।

आकाश के हृदय में सूर्य

श्रीशुक ने पुनः आरम्भ करते हुए राजा से कहा कि पार्थिव तल का विस्तार बताने के साथ ही विवेकीजनों ने आकाश-मण्डल का विस्तार भी प्रकट कर दिया है — क्योंकि जैसे दो दालों में से एक का माप जान लेने से दूसरे का माप जान लिया जाता है, वैसे ही ये दोनों परस्पर उत्तर देते हैं, और उनके बीच खुला आकाश फैला है, जो ऊपर के लोक और नीचे के लोक दोनों से जुड़ा है।

और वहाँ, उस आकाश के ठीक मध्य में स्थित, समस्त ज्योतियों के स्वामी देदीप्यमान सूर्य तीनों लोकों को एक साथ तपाते और आलोकित करते हैं। मन्द, तीव्र और सम — इन गतियों से, अर्थात् उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् की चाल से, ऊपर चढ़ते, नीचे उतरते और दैवी विधान के अनुसार मध्य स्थिति लेते हुए, सूर्य राशियों में से होकर, मकर से आरम्भ करते हुए, दिनों को बढ़ाते और रात्रियों को घटाते हैं, फिर

उनका माप उलट देते हैं, और नियत स्थानों पर उन्हें समान कर देते हैं।

यन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा स एष
उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्रसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु
राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥ ३ ॥

*yan-madhya-gato bhagavāṁs tapatāṁ patis tapana ātapena tri-lokīm pratapaty avabhāsayaty
ātma-bhāsā sa eṣa udagayana-dakṣiṇāyana-vaiṣuvata-saṁjñābhir māndya-śaighrya-samānābhir
gatibhir ārohaṇāvarohaṇa-samāna-sthāneṣu yathā-savanam abhipadyamāno makarādiṣu rāśiṣv
aho-rātrāṇi dīrgha-hrasva-samānāni vidhatte*

अर्थ: आकाश के मध्य में स्थित, समस्त ज्योतियों के स्वामी देदीप्यमान सूर्य अपने ताप से तीनों लोकों को तपाते और अपने प्रकाश से आलोकित करते हैं; और अपनी मन्द, तीव्र और सम गतियों से — उत्तरायण, दक्षिणायन और विषुवत् से — मकर आदि राशियों में से होकर, वे दिनों और रात्रियों को बढ़ाते-घटाते और समान करते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 21, श्लोक 3)

दिनों का बढ़ना और घटना

उस मुनि ने राजा से कहा कि यह माप कितनी कोमलता से घटित होता है। जब सूर्य मेष और तुला राशियों में विचरते हैं, तब दिन और रात तराजू के समान समान खड़े रहते हैं। जैसे-जैसे वे वृषभ से आरम्भ होने वाली पाँच राशियों में बढ़ते हैं, दिन लम्बे होते जाते हैं और रात्रियाँ मास-दर-मास लगभग आधी घटिका घटती जाती हैं; और जैसे वे वृश्चिक से आरम्भ होने वाली पाँच राशियों में से गुजरते हैं, क्रम उलट जाता है। इस प्रकार दिन तब तक बढ़ते रहते हैं जब तक सूर्य अपने दक्षिण-पथ की ओर न मुड़ें, और रात्रियाँ तब तक बढ़ती हैं जब तक वे पुनः उत्तर की ओर न लौटें। प्रकाश के इस समस्त उदय और क्षय में हम भगवान् के अपने हाथ को ही देखते हैं, जो प्रत्येक प्राणी को उसके श्रम का काल और उसके विश्राम का काल बाँट देता है।



जैसे सूर्यदेव का रथ राशि-चक्र के वलय में से होकर चलता है, दिन और रातें अपने नियत माप में बढ़ती और घटती हैं, जो भगवान् के प्रत्येक ऋतु के विधान को अंकित करता है (श्लोक 3-6)।

मानसोत्तर का वलय और लोकपालों की चार पुरियाँ

श्रीशुक ने कहा कि विवेकीजन गोलाकार मानसोत्तर पर्वत की चोटी पर सूर्य की परिक्रमा से तय की गई दूरी को नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन बताते हैं। और उस उन्नत वलय पर लोकपाल देवताओं की चार देदीप्यमान पुरियाँ खड़ी हैं, जो मेरु पर्वत के चारों ओर चार दिशाओं में स्थित हैं: पूर्व में इन्द्र की पुरी, देवधानी नाम की; दक्षिण में यम की पुरी, संयमनी नाम की; पश्चिम में वरुण की पुरी, निम्लोचनी नाम की; और उत्तर में चन्द्रदेव सोम की पुरी, विभावरी नाम की। जब सूर्य क्रमशः प्रत्येक पुरी में प्रवेश करते हैं, तब मेरु की चारों दिशाओं में उदय, मध्याह्न, अस्त और मध्यरात्रि होती है — और ये समस्त प्राणियों के लिए उनके जागरण और शयन, उनके कार्य-आरम्भ और उसे विराम देने के अवसर बन जाती हैं।

एवं नव कोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति तस्मिन्नेन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्धारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥

evam nava koṭaya eka-pañcāśal-lakṣāṇi yojanānām mānasottara-giri-parivartanasyopadiśanti tasminn aindrīm purīm pūrvasmān meror devadhānīm nāma dakṣiṇato yāmyām samyamanīm nāma paścād vāruṇīm nimlocanīm nāma uttarataḥ saumyām vibhāvarīm nāma tāsūdaya-madhyāhnāstamaya-niśīthānīti bhūtānām pravṛtti-nivṛtti-nimittāni samaya-viśeṣeṇa meros catur-diśam

अर्थ: मानसोत्तर पर्वत पर सूर्य की परिक्रमा नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन है। उस पर मेरु के पूर्व में इन्द्र की पुरी देवधानी; दक्षिण में यम की पुरी संयमनी; पश्चिम में वरुण की पुरी निम्लोचनी; और उत्तर में सोम की पुरी विभावरी स्थित हैं। जब सूर्य क्रमशः प्रत्येक पर पहुँचते हैं, तब मेरु की चारों ओर उदय, मध्याह्न, अस्त और मध्यरात्रि होती है, जो प्राणियों को उनकी प्रवृत्ति और निवृत्ति में लगाती है। (स्कन्ध 5, अध्याय 21, श्लोक 7)



मेरु पर्वत के चारों ओर, मानसोत्तर के वलय पर, लोकपालों की चार पुरियाँ खड़ी हैं — देवधानी, संयमनी, निम्लोचनी और विभावरी — जहाँ सूर्य का आगमन क्रमशः उदय, मध्याह्न, अस्त और मध्यरात्रि लाता है (श्लोक 7-9)।

श्रीशुक ने राजा से कहा कि जो मेरु पर ही निवास करते हैं, उनके लिए सूर्य सदा मध्याह्न के समान चमकते रहते हैं। और यद्यपि वे वस्तुतः पूर्व की ओर चलते हैं, मेरु को अपनी बाईं ओर रखते हुए, वे हमें पश्चिम की ओर चलते प्रतीत होते हैं — क्योंकि समस्त नक्षत्र-मण्डल प्रवह नामक प्रबल वायु से खींचा जाता है। जहाँ वे हमारी दृष्टि में उदित होते हैं, वहीं दूसरी ओर वे अस्त हो जाते हैं; और जहाँ वे अपने मध्याह्न-ताप से पृथ्वी को तपाते हैं, वहीं विपरीत ओर वे संसार को मध्यरात्रि की गहरी निद्रा में विश्राम दे देते हैं।

दिशाओं में सूर्य की अविराम गति

श्रीशुक ने आगे बताया कि यह महान् ज्योति अपने परिक्रमा-पथ पर कितनी शीघ्रता से चलती है। इन्द्र की पुरी से यम की पुरी तक, पन्द्रह घटिका में, सूर्य दो करोड़ सैंतीस लाख पचहत्तर हजार योजन तय करते हैं — अपनी कक्षा का पूरा एक चौथाई भाग — और उसी माप में वे वरुण की पुरी तक, फिर सोम की पुरी तक, और पुनः इन्द्र की पुरी तक जाते हैं, चारों पुरियाँ समान दूरी पर स्थित; और उनके साथ ही चन्द्रमा तथा अन्य ग्रह नक्षत्रों के साथ उदित और अस्त होते हैं। दो घटिका में चौतीस लाख आठ सौ योजन तय करते हुए, सूर्यदेव का वह रथ — वही रथ जो तीनों वेदों का स्वरूप है — चारों पुरियों में अपनी अखण्ड यात्रा कभी नहीं रोकता।

संवत्सर के एकमात्र चक्र वाला रथ

तब श्रीशुक ने स्वयं उस रथ का आश्चर्य प्रकट किया। उसका एकमात्र चक्र, विवेकीजन कहते हैं, स्वयं संवत्सर है, जो बारह मासों के लिए बारह अरों, छह ऋतुओं के लिए छह खण्डों के नेमि, और चार-चार मासों के तीन भागों के लिए तीन टुकड़ों की नाभि से बना है। उसकी धुरी एक छोर पर मेरु पर्वत की चोटी पर और दूसरे छोर पर मानसोत्तर के वलय पर स्थिर है; और वहाँ स्थिर होकर, तेल-यन्त्र के चक्र के समान घूमते हुए, रथ का चक्र उस पर्वत की समस्त लम्बाई पर परिभ्रमण करता है। एक दूसरी धुरी, पहली की एक-चौथाई लम्बाई की, अपने निचले छोर से उस बड़ी धुरी से जुड़ी है और अपने ऊपरी छोर से एक आकाशीय रज्जु द्वारा ध्रुव-तारे से बँधी है, जिससे दिनों, मासों और ऋतुओं का समस्त चक्र उस अचल उत्तरी बिन्दु के चारों ओर स्थिरता से घूमता है।

यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्णेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद् भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥ १३ ॥

yasyaikam cakram dvādaśāram ṣaṇ-nemi tri-ṇābhi saṁvatsarātmakam samāmananti tasyākṣo meror mūrdhani kṛto mānasottare kṛtetara-bhāgo yatra protaṁ ravi-ratha-cakram taila-yantra-cakravad bhraman mānasottara-girau paribhramati

अर्थ: उसका एकमात्र चक्र, विवेकीजन कहते हैं, स्वयं संवत्सर है, जिसमें मासों के लिए बारह अरे, ऋतुओं के लिए छह खण्डों का नेमि और तीन भागों की नाभि है; उसकी धुरी, एक छोर पर मेरु की चोटी पर और दूसरे छोर पर मानसोत्तर पर स्थिर, तेल-यन्त्र के चक्र के समान घूमती है, और इस प्रकार सूर्यदेव के रथ का चक्र मानसोत्तर पर्वत पर परिभ्रमण करता है। (स्कन्ध 5, अध्याय 21, श्लोक 13)



सूर्यदेव के रथ का एकमात्र चक्र स्वयं संवत्सर है — मासों के लिए बारह अरे, ऋतुओं के लिए छह-खण्डी नेमि — जिसकी धुरी मेरु पर टिकी है और मानसोत्तर के वलय पर घूमती है (श्लोक 13-14)।

सारथि अरुण और सात वैदिक अश्व

श्रीशुक ने कहा कि उस रथ का भीतरी भाग छत्तीस लाख योजन लम्बा और उसका एक-चौथाई चौड़ा है, और उसका जुआ नौ लाख योजन तक फैला है, ठीक उसी माप का। उस जुए से, सारथि अरुण द्वारा जोते गए, सात अश्व जुड़े हैं, जिनमें से प्रत्येक सात वैदिक छन्दों में से एक का नाम धारण करता है — गायत्री, बृहती, उष्णिक्, जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप् और पंक्ति — और ये सूर्यदेव को उनके अनन्त पथ पर आगे ले चलते हैं। स्वयं अरुण, यद्यपि सूर्यदेव के आगे बैठकर रथ हाँकते हैं, अपना मुख अपने स्वामी की ओर पीछे मोड़े रखते हैं, कहीं पीठ फेरकर वे ज्योति के स्वामी का तनिक भी अनादर न कर बैठें।

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुणयोजिता वहन्ति देवमादित्यम्
॥ १५ ॥

*ratha-nīḍas tu ṣaṭ-trimśal-lakṣa-yojanāyatas tat-turīya-bhāga-viśālas tāvān ravi-ratha-yugo yatra
hayāś chando-nāmānaḥ saptāruṇa-yojitā vahanti devam ādityam*

अर्थ: रथ की माप इस प्रकार बताई गई है: उसका ढाँचा छत्तीस लाख योजन आगे तक फैला है, चौड़ाई में उसका एक-चौथाई, और अरुण जिस जुए को इससे बाँधते हैं वह भी उसी संकरी माप का है; इससे जुड़े सात अश्व, प्रत्येक किसी वैदिक छन्द के नाम से जाने जाते हैं, सूर्यदेव को आगे ले चलते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 21, श्लोक 15)



सारथि अरुण, सूर्यदेव के आगे बैठे, अपना मुख श्रद्धापूर्वक अपने स्वामी की ओर पीछे मोड़े हुए, उन सात अश्वों को हाँकते हैं जो वैदिक छन्दों के नाम धारण करते हुए स्वर्णिम रथ को खींचते हैं (श्लोक 15-16)।

साठ सहस्र वालाखिल्य और सूर्यदेव की उपासना

अब श्रीशुक ने राजा को सूर्यदेव के सबसे छोटे और सबसे अथक उपासकों के विषय में बताया। उनके आगे बैठे और उनकी स्तुति गाने में नियुक्त हैं वालखिल्य ऋषि, संख्या में साठ सहस्र, जिनमें से प्रत्येक अंगूठे के अग्रभाग से बड़ा नहीं, जो ज्योति के स्वामी की एक ही देदीप्यमान स्वर-मण्डली में बिना रुके स्तुति करते हैं। उनके चारों ओर अन्य ऋषि, गन्धर्व और अप्सराएँ, नाग और यक्ष, यातुधान और देवता — कुल चौदह, सात युग्म बनाते और अनेक नाम धारण करते हुए — सूर्यदेव के रूप में विराजमान परमेश्वर की सेवा में उपस्थित रहते हैं, प्रत्येक गण अपने नियत मास में अपनी सेवा ग्रहण करता है, जिससे समस्त परिवर्तनशील संवत्सर में सूर्य-रूप भगवान् कभी अपूजित नहीं रहते।

तथा वालिखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥ १७ ॥

tathā vālikhilyā ṛṣayo 'nguṣṭha-parva-mātrāḥ ṣaṣṭi-sahasrāṇi purataḥ sūryam sūkta-vākāya niyuktāḥ samstuvanti

अर्थ: इसी प्रकार वालखिल्य ऋषि, संख्या में साठ सहस्र और प्रत्येक अंगूठे के अग्रभाग के समान, सूक्त-पाठ में नियुक्त होकर, सूर्यदेव के आगे खड़े होकर उनकी स्वर-मण्डली में स्तुति करते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 21, श्लोक 17)



साठ सहस्र अंगूठे-भर वालखिल्य ऋषि, सूर्यदेव के आगे बैठे, ज्योति के स्वामी की अविराम स्वर-मण्डली में स्तुति करते हैं, जिनके साथ वे ऋषि, गन्धर्व, अप्सराएँ और देवता भी हैं जो मास-दर-मास उनकी उपासना करते हैं (श्लोक 17-18)।

अन्त में, श्रीशुक ने उस परिक्रमा-पथ की समस्त परिधि का नाम लिया: मानसोत्तर पर पार्थिव तल का वलय नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन है, और इस विशाल घेरे में सूर्य एक ही क्षण में दो हजार दो योजन तय कर लेते हैं — इतनी शीघ्रता से, और इतनी निष्ठा से, ज्योति के स्वामी हमारे दिनों का नियत माप संभाले रखते हैं।

लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवल्यस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥ १९ ॥

lakṣottaram sārḍha-nava-koṭi-yojana-parimaṇḍalam bhū-valayasya kṣaṇena sagavyūty-uttaram dvi-sahasra-yojanāni sa bhuṅkte

अर्थ: मानसोत्तर पर मापी गई भूमण्डल की सम्पूर्ण घेरा-माप नौ करोड़ इक्यावन लाख योजन ठहरती है, और सूर्यदेव एक ही पल में उसमें से दो हजार दो योजन का अन्तर पार कर जाते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 21, श्लोक 19)

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

सूर्य भगवान् का नेत्र है, जो हमारे काल का विधान करता है। आकाश के मध्य में स्थित, सूर्य केवल स्वयं ही नहीं तपता; वह वह नियत साधन है जिससे परमेश्वर प्रत्येक प्राणी के कल्याण के लिए दिन और रात, ऋतु और संवत्सर का माप बाँटते हैं। एक उदय को देखना भगवान् द्वारा हमारे जीवन के अपने विधान को देखना है।

समस्त काल एक पावन चक्र के समान गढ़ा गया है। रथ का एकमात्र चक्र, जिसके अरे मास हैं और जिसका नेमि ऋतुएँ हैं, हमें सिखाता है कि काल का बीतना अन्धा या रिक्त नहीं, अपितु गढ़ा और सप्रयोजन है — एक चक्र जो अचल ध्रुव के चारों ओर सदा घूमता है, जैसे हमारे परिवर्तनशील दिन अपरिवर्तनशील भगवान् के चारों ओर घूमते हैं।

समस्त सृष्टि उनके आदेश पर चलती है। वैदिक छन्दों के नाम धारण करने वाले अश्व, नक्षत्रों को ले चलती प्रवह वायु, ध्रुव-तारे से बँधी धुरी — सब कुछ दैवी विधान के अधीन पूर्ण, अनायास व्यवस्था में चलता है। आकाश में कुछ भी संयोग पर नहीं छूटा, और हमारे अपने जीवन में कुछ भी उनकी देखरेख के परे नहीं।

छोटे-से-छोटा भी सबसे बड़ी सेवा दे सकता है। वालखिल्य, प्रत्येक अंगूठे के पोर से बड़ा नहीं, सूर्यदेव की अविराम स्तुति में नियुक्त हैं। भक्ति में महानता आकार या पद से नहीं, अपितु भगवान् की महिमा में लगे हृदय की स्थिरता से मापी जाती है।

सेवा के प्रत्येक कर्म में श्रद्धा का स्थान है। लगाम अपने हाथ में लिए आगे बैठे होकर भी अरुण अपने स्वामी की ओर पीठ नहीं करते, और इसीलिए पूरी यात्रा में उनकी ओर मुड़कर बैठते हैं — यह एक छोटा और सुन्दर चिह्न है कि सच्ची सेवा केवल हाथों से नहीं, अपितु अखण्ड श्रद्धा के साथ अर्पित होती है।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

आकाश का इस रूप में वर्णन सुनने में एक विशेष माधुर्य है — किसी ठण्डे यन्त्र के रूप में नहीं, अपितु दिव्य प्रेम के एक जीवन्त कर्म के रूप में। हम उदय को इतनी सहजता से हलके में ले लेते हैं, मानो वह बस हो जाता हो; और यहाँ श्रीशुक परदा हटाकर हमें उसके पीछे का स्वर्णिम रथ दिखाते हैं, वह श्रद्धालु सारथि, बिना रुके गाते वे लघुकाय ऋषि, पर्वतों पर स्थिरता से घूमता संवत्सर का वह महान् चक्र। सहसा हमारे दिनों का साधारण क्रम — जागना, कार्य करना, विश्राम करना, फिर जागना — कुछ ऐसा प्रकट होता है जिसे स्वयं भगवान् ने वात्सल्य और परिशुद्धता से रचा है, जिससे कोई प्राणी अपने प्रकाश के भाग और अपने विश्राम के भाग से वंचित न रहे। जब हम काल को इस दृष्टि से देखने लगते हैं, तब घंटे भार होना छोड़ देते हैं और उपहार बन जाते हैं, प्रत्येक उषा एक नई कृपा। और यदि अंगूठे-भर वालखिल्य भी अपना समस्त अस्तित्व केवल ज्योति के स्वामी की स्तुति में लगा सकते हैं, तो निश्चय ही हम, जिन्हें इतना अधिक मिला है, प्रत्येक नए दिन का स्वागत कृतज्ञता के एक शब्द और अरुण के मुख के समान सदा अपने स्वामी की ओर मुड़े हृदय से करना सीख सकते हैं।

एक दैनिक भाक्ते-साधना

कल उषाकाल में, दिन के कार्यों के भीड़ लगाने से पहले, प्रथम प्रकाश पर रुककर उसे सचेत रूप से उस भगवान् के उपहार के रूप में ग्रहण कीजिए जो आपके कल्याण के लिए सूर्य के उदय और अस्त को रचते हैं। जुड़े हाथों से अथवा केवल एक शान्त हृदय से, ये पावन शब्द अर्पित कीजिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” फिर, दिन भर, घंटों का बीतना आपको उस संवत्सर के महान् चक्र का स्मरण कराए जो उनके आदेश पर निष्ठा से घूम रहा है, और जब भी आप बदलते प्रकाश को देखें, भीतर एक धन्यवाद की साँस लीजिए। इस छोटी-सी साधना में, हम अपने ढंग से, वालखिल्यों की अनन्त स्वर-मण्डली में सम्मिलित होते हैं।

उपसंहार

पंचम स्कन्ध का इक्कीसवाँ अध्याय हमारी दृष्टि को पृथ्वी से उठाकर आकाश के देदीप्यमान मण्डल की ओर ले जाता है, जहाँ श्रीशुक आकाश के मध्य में एक दीप के समान स्थित सूर्य को प्रकट करते हैं, जो तीनों लोकों को तपाते और आलोकित करते और राशियों में से गुज़रते हुए हमारे दिनों का बढ़ना-घटना बाँटते हैं। वे हमें लोकपालों की चार पुरियों सहित मानसोत्तर का वलय दिखाते हैं; वह अद्भुत रथ जिसका एकमात्र चक्र संवत्सर है, ध्रुव-तारे के चारों ओर घूमता हुआ; वैदिक छन्दों के नाम धारण करने वाले सात अश्व, श्रद्धालु अरुण द्वारा जोते गए; और वे साठ सहस्र अंगूठे-भर वालखिल्य जो ज्योति के स्वामी की बिना रुके स्तुति करते हैं, जिनके साथ वे ऋषि और दिव्य प्राणी भी हैं जो मास-दर-मास उनकी उपासना करते हैं। इस सबमें हम एक ही सत्य देखते हैं: कि काल का समस्त विधान परमेश्वर की स्नेहमयी रचना है, और आकाश का चिन्तन करना उन्हीं की उपासना है जो उसे चलाते हैं।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, एकविंश अध्याय।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान - विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-21-sun-god-chariot-wheel-of-the-year-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

